प्राचीन शिक्षा पद्धति की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

*जल सिंह गुर्जर

शोध सारांश

वैदिक काल की शिक्षा हवन, यज्ञ, गुरु–शिष्य परम्परा, देव–ऋषि–अर्चना सम्मान पूर्वजों के सदाचार का अनुसरण, त्याग, संयम, मर्यादा आदि का व्यावहारिक ज्ञान विद्यार्थी को दिया जाता था। आध्यात्मिक ज्ञान के साथ शारीरिक, मानसिक ज्ञान की भी व्यवस्था थी।

वर्तमान संदर्भ में शिक्षा बौद्धिक एवं वैज्ञानिक ढंग से शिक्षा अर्जित की जाती है। आज शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीण विकास करना है। आज सर्वशिक्षा अभियान का नशा चारों ओर गूंज रहा है। प्राईमरी शिक्षा व उच्च शिक्षा प्राप्ति का अधिकार नागरिक को प्राप्त है। इसके लिए सरकार की ओर से विशेष सुविधा भी विभिन्न योजनाओं द्वारा दी जा रही है। किन्तु इस शिक्षा का मुख्य और मूल उद्देश्य अच्छे से अच्छा रोजगार प्राप्त कर अधिक से अधिक धनार्जन कर भौतिक समृद्धियुक्त जीवनयापन करना है।

प्राचीनकाल में 'शिक्षा' का मुख्य उद्देश्य अध्यापन तथा ज्ञान ग्रहण करना था परन्तु वर्तमान युग में शिक्षण के लिए ज्ञान, विद्या, एजुकेशन आदि अनेक पर्यायवाची शब्द प्रचलित हैं। शिक्षा चेतन या अचेतन रूप से मनुष्य की रुचि, समताओं, योग्यताओं और सामाजिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए, आवश्यकता के अनुसार स्वतंत्रता देकर उसका सर्वांगीण विकास तो करती रही है साथ ही उसके आचरण को परिवर्तित कर इस ढंग से चरित्र का निर्माण करती है, जिससे शिक्षार्थी, समाज एवं राष्ट्र का भी उत्थान होता है। विद्या ज्ञान से मस्तिष्क में शुद्ध विचारों का जन्म होता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति प्रारम्भ से ही संस्कारजन्य गुणों को धारण करता हुआ समाज में एक श्रेष्ठ नागरिक के पद पर आसीम होता है।

प्राचीन शिक्षा पद्धति की आज के संदर्भ में प्रासंगिकता को हम विभिन्न प्रकार से समझ सकते हैं –

शिक्षा का स्वरूप

हमारी शिक्षा का स्वरूप कैसा था और यह शिक्षा कैसे दी जाती थी–बालक जैसे ही बोलने समझने के योग्य हुआ कि उसे पांच से सात वर्ष की आयु में उसका शिक्षा आरम्भ करा देना अनिवार्य समझा जाता था। अक्षराम्भ के साथ शुद्धोच्चारण का पूर्ण ध्यान रखा जाता था क्योंकि शब्द के साथ शाब्दिक भाव और वाचक के साथ वाच्य का तादात्म्य सम्बन्ध रहता है।

वर्तमान संदर्भ में शिष्य को विभिन्न भाषाओं के माध्यम से विभिन्न विषयों का अध्ययन पुस्तकों द्वारा करवाया जाता है, जिसके कारण बच्चा किसी एक भी भाषा या क्षेत्र में पूर्णतः अधिकार उच्च उपाधि (एम. ए.) के प्राप्त कर लेने पर भी नहीं हो पाता, जिसके कारण पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों के साथ अतिरिक्त पुस्तकों को पढ़ने के परिणामस्वरूप भी उसमें वास्तविक अर्थ को समझने का सामर्थ्य नहीं होता है। इस प्रकार वर्तमानकालीन प्रारम्भिक शिक्षा पूर्व वैदिककाल की शिक्षा प्रणाली से नितान्त भिन्न है।

विद्यारम्भ (अक्षरारम्भ) के अनन्तर उपनयन संस्कार होता था, जिसका अर्थ है – शिक्षा के लिए बालक को गुरु के निकट ले जाकर उसको शिष्य बनाना (उप–समीप में, नयन = ले जाते हुए) शिक्षा को इस प्रकार से अनिवार्य करने का यह एक सुन्दर उपाय भी था। प्रथम माता के गर्भ से जन्म, दूसरा गुरु के समीप पढ़ने से ज्ञानचक्षु प्राप्त कराने

वाला जन्म देकर। आचार्य उपनयमानो.... इत्यादि मंत्र के उच्चारण द्वारा उपनयन संस्कार सम्पन्न कर ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में तीन रात्रि तक धारण कर उसे कलुषित संस्कारों से मुक्त कराता हुआ द्वितीय जन्म प्रदान करता है अर्थात् अपने व्यक्तित्व के अनुरूप उसके व्यक्तित्व को ढालने का प्रयास करता है, यहां तक था कि इस संस्कार को न करने वाला व्रात्य (पतित) अथवा समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था।

वर्तमान संदर्भ में उपनयन संस्कार (विद्या आरम्भ) मंत्र उच्चारण की विधि द्वारा सम्पन्न नहीं किया जाता परन्तु बालक–बालिका के शिक्षा आरम्भ होने पर माता–पिता मंदिर या घर में ही बालक परमात्मा के समक्ष नतमस्तक कर आशीर्वाद प्राप्त करता है। बच्चे को शिक्षा प्राप्ति के लिए विद्यालय ले जाते हैं। इस अवसर पर बच्चे को विद्यालय प्रवेश कराने की खुशी में बच्चों में मिठाई या टाफियाँ को बाँटा जाता है। इस प्रकार बच्चों की शिक्षा प्रारम्भ की जाती है।

समावर्तन संस्कार

वैदिककाल में 12 वर्ष की शिक्षा समाप्त कर जब शिष्य अपने घर लौटने के लिए उद्यत होता है तो गुरु उसे समावर्तन उपदेश देता था। यह उपदेश उसके जीवन की आचार संहिता पर होता था। आज इसका रूप दीक्षांत समारोह ने ले लिया है जिसमें विद्यार्थियों को प्रमाण–पत्र दिये जाते हैं। प्रमाण–पत्र प्राप्त कर लेने पर विद्या विस्मृत हो जाती है, अतः इसी बात को ध्यान में रखते हुए प्राचीन ऋषियों ने गार्हस्थ्य जीवन में भी रक्षा बंधन, गोष्ठियाँ एवं पर्वों में अध्ययन सामग्री को स्मरण किया जाता था।

शिष्य (ब्रह्मचारी)

प्राचीनकाल में विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य काल में शिक्षा प्राप्ति के लिए निरन्तर गुरु के पास ही रहना पड़ता था, जिसके कारण उनका जीवन गुरु के जीवन के साथ ही घुलमिल जाता था। इन शिक्षार्थियों को 'अन्तेवासी' कहा जाता था। वर्तमान समय में अंग्रेजी में प्रयुक्त स्टूडेंट शब्द छात्र, विद्यार्थी अथवा शिक्षार्थी का वाचक है। 'छात्र' शब्द से अभिप्राय उन जिज्ञासुओं अथवा पढ़ने वाले बालकों से है, जो व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से कक्षादृसमूह का निर्माण करते हैं अर्थात् वे लोग जिनके लिए ही शिक्षा कार्यक्रम का अस्तित्व एवं संचालन होता है।

वेशभूषा

प्राचीनकाल में ब्रह्मचारी के लिए एक विशिष्ट प्रकार की वेशभूषा निर्धारित थी, जो एक मृग या बकरी के चर्म, सन, रेशम या ऊन से बनी होती थी, जो विविध वर्गों के छात्रों के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के चर्म तथा रंग के होते थे।

वर्तमान समय में भी विद्यार्थियों के लिए विशेष वस्त्र (यूनीफार्म) की व्यवस्था है। उनकी यूनीफार्म भिन्न–भिन्न संस्थाओं के साथ भिन्न–भिन्न रंगों में होती है।

गुरुकुल

वैदिक काल में गुरुकुल प्रणाली प्रचलित थी। विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण पर्यन्त गुरुकुल में ही रहते थे और गुरु की देखरेख में विद्या अर्जित करते थे। यह गुरुकुल गांवों एवं नगरों से बाहर शांत वातावरण में होते थे। शहर से दूर रहकर एक आदर्श वातावरण में शिक्षण का कार्य होता था। गुरु तथा गुरुपत्नी विद्यार्थी के माता–पिता के समान ही उनकी देखरेख करते थे।

वर्तमान काल में गुरुकुल का स्थान होस्टल (बोर्डिंग) या स्कूलों में 'डे–बोर्डिंग' ने ले लिया है। जहां माता–पिता अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा के लिए होस्टल में प्रवेश करवाते हैं परन्तु यहां पर शिक्षार्थी आत्मनिर्भर होता है। आज विश्वविद्यालयों इत्यादि में स्वच्छन्द वातावरण में पथभ्रष्ट होते भी दिखाई देते हैं और उनके मन में अपने गुरु के प्रति वैसा आदर–भाव दिखाई नहीं देता जैसा कि प्राचीनकाल में था।

वैदिककाल में शिष्य (विद्यार्थी) सम्पूर्ण अध्ययन काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याध्ययन करते थे।

इन्द्रियनिग्रह, सात्विक जीवन तथा ब्रह्म में ध्यान को स्थिर रखने पर विशेष बल दिया जाता था परन्तु आजकल होस्टल, स्कूल, कॉलेजों में लड़के और लड़कियों को एक साथ शिक्षा दी जाती है और उनकी शिक्षा आधुनिक तकनीकी, प्रणाली द्वारा दी जाती है, जिसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी द्वारा केवल मात्र एक अच्छी आजीविका के साथ अच्छा वेतन प्राप्त करना तो होता ही है, साथ ही वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अध्यात्म विद्या सम्बन्धी ज्ञान का अभाव होने से शिष्य में संयमित जीवन जीने की भावना का विकास नहीं हो पाता, जिसकी आज के भौतिकवादी युग में अत्यधिक आवश्यकता है।

आचार्य

वैदिक साहित्य में 'आचार्य' (गुरु) के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि जो शिष्य को आचारवान, बुद्धिमान, धर्मज्ञ बनाता है, वह आचार्य है। अर्थ ग्रहण करने योग्य बनाता है वह आचार्य है। प्राचीनकाल में गुरु केवल विद्या के धनी ही नहीं थे बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में वह एक अद्वितीय योग्यता रखते थे। वह अपने शिष्यों के लिए एक आदर्श थे, उनका सदाचरण शिष्यों पर प्रभाव छोड़ जाता था। आचार्य के व्यक्तित्व में संयम, वाचस्पति, ज्ञाननिधि, तत्त्वदर्शी, वाक्तत्त्ववित होते थे। उनका व्यक्तित्व संयम, तप, तयाग, क्षमा, दया, उदारता आदि गुणें से सम्पन्न था। यही कारण था कि उनका सदाचरण शिष्यों पर अमिट छाप छोड़ जाता था। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आध्यापक के लिए आंग्ल भाषा में प्रचलित Teacher शब्द आचार्य (गुरु) का समानार्थक शब्द है, इसमें प्रयुक्त प्रत्येक अक्षर आचार्य (गुरु) के उत्कृष्ट व्यक्तित्व और गुणों का ही बोध कराता है,

जैसे Teacher शब्द का अर्थ –

T = Tactful अथवा ज्तमदक पद teaching methodology का वाचक है, जिसका अर्थ–वाक् चातुर्य अथवा शिक्षण प्रविधि में निपुण होना है।

E = Enthusiasm का बोधक है, जो उत्साह का सूचक है।

A = Address अथवा Attentiveness का द्योतक है, जिसका अर्थ सम्बोधन अथवा ध्यान केन्द्रित करना है।

C = Capacity of Leadership अर्थात् नेतृत्व की क्षमता का बोध कराता है।

H = Honesty अर्थात् ईमानदारी का प्रतीक है।

E = Emotional Stability अर्थात् संवेगात्मक संतुलन के गुण को प्रदर्शित करता है।

R = Respectful अर्थात् Reserve का सूचक है, जिसका अर्थ आदरणीय अथवा सुरक्षित है।

इस प्रकार शिक्षक ही वह शक्ति है, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मानव जाति को उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है। शिक्षक बालमनोविज्ञान का ज्ञाता है, वह छात्र की रुचि, योग्यता और आवश्यकता का भलीभांति मूल्यांकन कर उचित निर्देश प्रदान करता है। इस प्रकार प्राचीनकाल में गुरु शिष्य का सन्मार्ग दर्शन कर उसे एक अच्छा नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

गुरु–शिष्य सम्बन्ध

गुरु बिना ज्ञान प्राप्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिष्य को चाहिए कि वह समित्पाणि होकर आचार्य की सेवा में उपस्थित हो।

वैदिक साहित्य में गुरु और शिष्य का सम्बन्ध अति पवित्र माना गया है। गुरु–शिष्य का सम्बन्ध पिता एवं पुत्र की भांति होता था। यह गौरवपूर्ण एवं मधुर था। आचार्य शिष्यों के प्रतिपूर्ण स्नेह रखते थे और उनका सभी प्रकार से योग्य बनाना उन्हीं का उत्तरदायित्व था। आचार्य की सेवा करना और उनके आदेशों का पालन करना शिष्य भी अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। शिक्षण के क्षेत्र में आचार्य उनके पितृतुल्य थे। सम्बन्ध की घनिष्ठता के कारण आचार्य को माता भी माना गया। शिक्षण काल में शिष्य, आचार्य के गर्भ में रहता था।

अध्यापक और विद्यार्थी के बीच स्नेह, आत्मीयता, सौहार्द्धपूर्ण की भावना जैसी पूर्ववत् दिखाई देती है वैसी आज

नहीं। आज का विद्यार्थी ज्ञान के नाम पर विभिन्न डिग्रियों, डिप्लोमाओं से सम्बन्धित प्रमाण–पत्र तो प्राप्त कर लेता है लेकिन शिक्षण, चरित्रज्ञान, उत्कृष्ट व्यक्तित्व का उसमें अभाव रहता है। इन सबके बिना विद्यार्थी की शिक्षा अधूरी है।

वर्तमान काल में मानवीय जीवन से सम्बन्धित व्यावहारिक, लोकव्यवहार एवं उत्कृष्ट व्यक्तित्त्व का परिचायक चरित्रगत विशेषताओं एवं गुणों का उत्कर्ष घटता जा रहा है। व्यावहारिक शिक्षा के अभाव में विद्यार्थी की शिक्षा सर्वथा अपूर्ण समझी जाती है।

शैक्षिक योग्यता सम्बन्धी ज्ञान के साथ–साथ व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना शिक्षक का परम कर्त्तव्य है जैसा कि वैदिक साहित्य में समावर्तन संस्कार के अवसर पर गुरु द्वारा शिष्य को दिया गया उपदेश आज भी सभी के लिए अनुकरणीय है।

निष्कर्ष

मानव जीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। बिना शिक्षा के मानव, मानव नहीं रहता अपितु पशु के तुल्य है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भौतिकता का विकास एवं उन्नति अपने चरमोत्कर्ष पर है। वैज्ञानिकता के इस युग में सामयिक दृष्टिकोण से यह अनिवार्य भी है, किन्तु साथ ही शिक्षा का सोद्देश्य होना भी आवश्यक है। आज समाज में भ्रष्टाचार, अशान्ति, रक्तपात, चोरी, हिंसा, बलात्कार, आतंकवाद निरन्तर बढ़ती हुई विकृतियों के कारण मनुष्य का जीना दुर्भर हो गया है। इसीलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में वैदिक शिक्षा के सिद्धान्तों का समावेश करने की, क्योंकि सम्प्रति शिक्षा में हम जिन शैक्षिक मूल्यों का अभाव पाते हैं वे हमें वैदिक शिक्षा में प्राप्त होते हैं।

***व्याख्याता**
नेताजी सुभाष चन्द्र बोस कॉलेज, खेड़ली,
अलवर, (राज.)

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भा.सं.सा. पृ. 208
2. सं.हि.को., पृ. 206
3. आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
   तं रात्रीस्तस्त्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंचयन्ति ।। – अथर्व. 11/5/3.
4. जन्मना जायते शूद्रः संस्कार द्विज उच्चते।
   विद्याया याति विप्रत्वं त्रिभि श्रोत्रिय उच्चते।। – मनु.
5. आचार्यः अस्मादाचारं ग्राहत्याचिनोत्यर्थानाचिनोतिबुद्धिमिता वा।
   यस्माद् धर्ममाचितानि स आचार्यः। – आप.ध.सू. 1/1/1/14.
6. Wikipedia.org
7. उपनीय तु यः शिष्य वेद मध्यापयेद् द्विजः ।
   संकल्प सरहस्यं च तमाचार्य प्रचक्षते ।। मनु. 2/140
8. अथर्व., 1/5/3
9. शि.वि., 3/7